श्रीरामकृष्णाभ्यां नमः

श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः

॥ श्रीमद्भगवद्भक्तेभ्यो नमः ॥

श्री भक्तमाल (सटीक)

वैष्णवरत्न श्रीप्रियादासजी कृत भक्तिरसबोधिनी टीका एवं भक्ततोषणी टिप्पणी सहित

भाषा टीकाकार

भक्तमाली श्रीगणेशदासजी (गोवर्धन)

भक्ततोषिणी टिप्पणीकार

रामायणी श्रीरामकृपालदासजी (चित्रकूटी)

प्रकाशक

श्री सद्गुरु पुस्तकालय

श्रीशालग्राम कुटी, मयूर बिहार कालोनी

(निकट कैलाश नगर) श्रीवृन्दावन धाम (मथुरा) उ० प्र०

फोन - 0565 - 2456823 मो० - 09837233002

प्राप्ति स्थान

श्रीरामानन्द पुस्तकालय-श्रीसुदामा कुटी-वृन्दावन

में माधव विद्यार्थीके रूपमें श्रीविन्दुमाधवजीने आपकी सेवा की। सन्त सेवाके लिए स्वयं भगवान श्यामसुन्दर सौधा सामान दे गये। श्रीप्रभुकृपाका एक प्रसंग आगे छप्पय ५२ कवित्त २३४ में देखिये। श्रीश्रीधरस्वामीजीके उपदेश– "तपन्तु तापैः प्रपतन्तु पर्वताद्, अटन्तु तीर्थानि पठन्तु चागमान्। यजन्तु यागैर्विवदन्तु वादैर्हरिं विना नैव मृतिं तरन्ति॥" अर्थ–कोई चाहे कितना ही तपसे तपे, पर्वतसे गिरे, तीर्थाटन करे, वेदपाठ करे, यज्ञ करे अथवा शास्त्रार्थ करे परन्तु बिना भगवत् शरणागतिके भवसागरसे पार नहीं हो सकता है।

श्रीविल्वमङ्गलजी

(श्री)कृष्ण कृपा कोपर प्रगट विल्वमंगल मंगलस्वरूप॥
'करणामृत' सुकवित्त युक्ति अनुछिष्ट उचारी।
रसिक जनन जीवन हृदय जै हारावलि धारी॥
हरि पकरायौ हाथ बहुरि तहँ लियौ छुटाई।
कहा भयो कर छुटे बदौं जौ हिय ते जाई॥
चिन्तामणि संग पाइकै ब्रजवधू केलि बरनी अनूप।
कृष्णकृपा कोपर प्रगट विल्वमंगल मंगल स्वरूप॥४६॥

भावार्थ—भगवान् श्रीकृष्णके परम कृपापात्र श्रीविल्वमङ्गलजी इस संसारमें प्रत्यक्ष मंगल-कल्याणके स्वरूप थे। विश्वका मंगलही विल्वमंगलके रूपमें प्रगट हुआ। आपने 'श्रीकृष्णकर्णामृत' नामक सुन्दर काव्यका निर्माण किया, जिसकी उक्तियाँ सर्वथा नई हैं, दूसरे कवियोंकी जूठी नहीं हैं। प्रेमाभक्तिसे प्रगट सहज एवं दिव्य उद्गार हैं। श्रीकृष्णकर्णामृत रसिकभक्तोंका जीवन-प्राण है, उन्होंने इसे कई लड़ियोंके हारके समान अपने हृदयमें धारण किया है। एकबार भगवान श्यामसुन्दरने (अन्धा होनेपर वृन्दावनका) मार्ग दिखाते हुए अपना हाथ पकड़ाया और फिर उसे छुड़ा लिया। उस समय आपने उनसे कहा–हाथ छुड़ाकर चले जानेसे क्या हुआ, मैं तुम्हें वीर पुरुष तब समझूँ, जब मेरे हृदयके बन्धनसे छूटकर चले जाओ। आपने चिन्तामणिका संग पाकर व्रजगोपियोंके साथ हुई श्रीकृष्णकी लीलाओंका अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया है। उसके द्वारा सभी भक्तोंका मंगल हुआ अतः आप मंगलकी मूर्ति ही थे॥४६॥

कृष्ण वेना तीर एक द्विज मतिधीर रहै ह्वै गयो अधीर संग चिन्तामनि पाइकै।
तजी लोकलाज हिये वाहीको जु राज भयौ निशि दिन काज वहै रहै घर जाइकै॥
पिताको सराध नेकु रह्यो मन साधि दिन शेषमें आवेश चल्यौ अति अकुलाइकै।
नदी चढ़ी रही भारी पैये न अवारी नाव भाव भर्यौ हियौ जियौ जात न धिजाइकै।१६५॥

भावार्थ—दक्षिण भारतकी कृष्णवेना नामक पवित्र नदीके तटपर एक ग्राममें श्री-विल्वमंगल नामक ब्राह्मण रहते थे। जो बड़े गम्भीर एवं धैर्यवान थे। लेकिन चिन्तामणि नामकी वेश्याका संग (नृत्यगान आदि) पाकर उसमें आसक्ति होकर बिल्कुल अधीर (चंचल चित्त) हो गये। उसके प्रेमफन्द में फँसकर इन्होंने लोकलज्जा एवं कुलकी सभी मर्यादाओंका त्याग कर दिया। इनके हृदयपर उसका पूरा-पूरा अधिकार हो गया। सब कुछ छोड़कर बस यही एक आपका काम रह गया था कि दिन-रात उसीके घरमें जाकर रहते थे। एक बार पिता (श्रीरामदासजी)के श्राद्धके समय किसी प्रकार अपने मनको रोककर कुछ देर घरमें रहे। परन्तु सायंकाल होतेही आप उसके प्रेमके आवेशमें आ गये। दिन भरके विरहसे अत्यन्त व्याकुल होकर उसके घरकी ओर चल पड़े। चिन्तामणिका घर नदीके उस पार था। उस दिन नदीमें बड़ी भारी बाढ़ आ गई थी। बिलम्ब हो जाने के कारण इसपार नाव नहीं मिली। इधर इनके मनमें चिन्तामणिसे मिलनेकी उत्कट उत्कण्ठा हुई। इससे विल्वमंगलजीको जीवन धारण करना अति असम्भव हो रहा था ॥१६५॥

करत विचार वारिधार में न रहै प्राण ताते भली धार मित्र सनमुख जाइयै।
परे कूदि नीर कछु सुधि न शरीर की है वही एक पीर कब दरसन पाइयै॥
पैयत नु पार तन हारि भयो बूड़िबे कों मृतक निहारि मानी नाव मन भाइयै।
लगेई किनारे जाय चले पग धाय चाय आए पट लागे निशि आधी सो विहाइयै॥१६६॥

भावार्थ—श्रीविल्वमंगलजीने अपने मनमें विचारा कि—नदीकी इस तीव्र धारामें पार जानेकी इच्छासे कूदनेपर डूब जाऊँगा और बिना चिन्तामणिके समीप पहुंचे यहां इस पार उसके वियोगमें प्राण नहीं रहेंगे। यहां मरनेकी अपेक्षा नदीकी धारमें अपनी प्रियतमा की ओर जाकर मरना अच्छा है। सम्भव है कि धारमें न डूबकर पहुँच ही जाऊँ। ऐसा विचारकर आप नदीकी धारमें कूद पड़े। प्रेमविवश आपको अपने शरीरकी कुछ भी खबर नहीं है, प्रियतमाका ध्यान है। मनमें एकमात्र यही लालसा है कि अपनी प्रेयसीके दर्शन कब प्राप्त हों। धारामें तैरते-तैरते अधिक समय बाद भी वह किनारा अभी बहुत दूर था। आप बहुत थक गये, शरीर शिथिल हो गया, ये डूब ही रहे थे कि एक बहता हुआ मुर्दा (सतीसाध्वी पतिव्रता पत्नीका) पासमें देखकर उसे मनचाही नाव माना और उसका सहारा लेकर किनारे पर जा लगे। अब ये बड़ी उमंगके साथ दौड़कर चिन्तामणिके द्वार पर पहुंचे, परन्तु उस समय आधी रात बीत रही थी अतः घरका द्वार बन्द था ॥१६६॥

अजगर घूमि झूमि भूमिको परस कियो लियोई सहारो चढ्यो छात पर जायकै।
ऊपर किवार लगे पर्‌यो कूदि आंगन में गिर्‌यो यों गरत रागी जागी सोर पायकै॥

दीपक बराइ जो पै देखै विल्वमंगल है बड़ोई अमंगल तूं कियो कहा आय कै ।
जल अन्हवाय सूखे पट पहराय हाय ! कैसें करि आयो जल पार द्वार धाय कै ॥१६७॥

भावार्थ—उस समय एक मोटा लम्बा-सा साँप छतसे नीचेकी ओर घूमकर लटका हुआ धरतीको छू रहा था। विल्वमंगल प्रेमावेशमें थे अतः उन्होने साँपको रस्सी मानकर उसका सहारा लिया और छतपर जा चढ़े, ऊपर भी जीने (सीढ़ी)के किवाड़ बन्द थे, नीचे उतरनेका रास्ता न पाकर आंगनके गढ्ढेमें कूद पड़े। प्रेमीके गिरनेसे जो धमाका हुआ उसे सुनकर प्रेमिका जग गई। उसने दीपक जलाकर देखा तो विल्वमंगलजी दिखलाई पड़े। चिन्तामणिने कहा–तुम्हारा नाम तो विल्वमंगल है पर तुम बड़े ही अमंगल (बुरे) हो। तुमने इस समय यहां आकर क्या किया। विल्वमंगलका शरीर कीचसे सना था अतः उन्हें जलसे स्नान करवाकर उन्हें सूखे वस्त्र पहनाये। पश्चात् शोक करती हुई बोली–अब तुम यह तो बताओ कि तुमने नदीको कैसे पार किया और कैसे छतपर चढ़े ॥१६७॥

नौका पठवाई द्वार लाव लटकाई देखि मेरे मन भाई मैं तो तबै लई जानि कै ।
चलो देखौं अहो, यह कहा धौं प्रलाप करै देख्यो विषधर महा खीजी अपमानि कै ॥
जैसो मन मेरे हाड़ चाम सौं लगायो तैसो स्याम सों लगावो तौ पै जानिये सयानिकै ।
मैं तो भये भोर भजौं युगल किशोर अब तेरी तुही जानै चाहौ करौ मन मानिकै ॥१६८॥

भावार्थ—कैसे आये–इसका उत्तर देते हुए विल्वमङ्गलजीने कहा–नदीपार करनेके लिए तुमने ही तो नाव भेजी और छतपर चढ़नेके लिए रस्सी लटकाई। यह देखकर मेरा मन अति प्रसन्न हुआ और तभी मैंने जान लिया कि तुम्हारा मुझपर कितना अधिक प्रेम है। फिर आप क्यों पूछती हो कि कैसे आये। यह सुनकर चिन्तामणिने मनमें सोचा कि-अरे ! यह कैसी मिथ्या बात कर रहे हैं, चलकर देखूँ। जाकर उसने देखा कि रस्सी के स्थानपर महाविषधर सर्प लटक रहा है। तब वह विल्वमङ्गलका अपमान करती हुई खीझकर बोली कि–तुमने जिस प्रकार अपना मन मेरे हांड-चामके शरीरमें लगाया, उस प्रकार यदि भगवान श्यामसुन्दरसे लगाते, तब मैं तुम्हें बड़ा चतुर जानती। नश्वर वस्तुसे मोह दोनों लोकोंमें दुःखदायक है अतः मैं तो प्रातःकाल होते ही अब केवल युगलकिशोर राधाकृष्णका भजन करूँगी। तुम क्या करोगे, उसे तुम जानो। यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो तुम भी मेरी बात मानकर प्रभु का भजन करो ॥१६८॥

खुलि गई आँखें अभिलाषैं रूप माधुरी कौं चाखैं रसरंगऔ उमंग-अंग न्यारियै ।
बीन लै बजाई गाई विपिन निकुंज क्रीड़ा भयो सुख पुंज जापै कोटि विषै वारियै ॥

बीति गई राति प्रात चले आप आप कौं जू हिये वही जाप दृग नीरि भरि डारियै ।
सोमगिरि नाम अभिराम गुरु कियो आनि सकै को बखानि लाल भुवन निहारियै ।।१६६।।

भावार्थ—चिन्तामणिकी इस उपदेश भरी फटकारसे श्रीविल्वमङ्गलजीके हृदयके नेत्र खुल गए—विवेकका उदय हो गया और वे नश्वर रूपके बजाय अविनाशी श्रीकृष्णके सौन्दर्य-माधुर्यके आस्वादनकी अभिलाषा करने लगे। उनके हृदयमें विलक्षण प्रेमानन्दका अनुभव होने लगा और अंग-अंगमें अद्भुत एवं अपार उत्साह भर गया। दोनोंके जीवनमें परिवर्तन हो गया। चिन्तामणिने अपनी वीणा ली (और विल्वमङ्गलने मृदंग सँभाला) दोनों श्रीवृन्दावनकी कुञ्जोंमें की गई श्रीराधाकृष्णकी मधुर लीलाका गान करने लगे। उसमें तन्मय हो जानेसे दोनोंको अपार आनन्द हुआ जिसपर करोड़ों सांसारिक भोग-विषय सुख न्यौछावर किये जा सकते हैं। इस प्रकार प्रेमसे ही हरि-गुण गाते हुए जब सारी रात बीत गई, तब प्रातःकाल अपने पूर्व निश्चयके अनुसार श्रीविल्वमङ्गलजी गुरु आश्रमकी ओर एवं चिन्तामणि हरिद्वारकी ओर राह अपनाई। अर्थात् साधना आरम्भ कर दी। दोनोंके हृदयमें वही भगवद्ध्यान और नामजप था। उनके नेत्रोंसे प्रेमके आँसुओं की धारा बह रही थी। श्रीविल्वमङ्गलजीने परम प्रेमी सोमगिरि नामक सन्तको गुरु बनाया, उनसे दीक्षा ली। उनके प्रेमभावका वर्णन कौन कर सकता है? आप सम्पूर्ण संसारमें श्रीकृष्णको देखते थे। उनकी दृष्टिमें संसार प्रेमरङ्ग में रँगा था ।।१६६।।

रहे सो बरस रस सागर मगन भये नये नये चोजके श्लोक पढ़ि जीजिये ।
चले वृन्दावन मन कहै कब देखौं जाय आय मग मांझ एक ठौर मति भीजिये ।।
पर्‌यो बड़ो सोर दृगकोर कै न चाहैं काहू तहां सर तिया न्हाति देखि आंखैं रीझियै ।
लगे वाके पाछे काछे कांछकी न सुधि कछू गई घर आछे रहे द्वार तन छीजिये ।।१७०।।

भावार्थ—श्रीविल्वमङ्गलजी एक वर्ष तक गुरुदेवकी सेवामें रहकर प्रेमरसके समुद्र में गोते लगाते रहे। नित्य नये-नये भक्तिरसमय काव्योंका अध्ययन करते थे और भावपूर्ण नवीन श्लोकोंकी रचना भी करते थे, उससे श्रीवृन्दावनके दर्शनकी लालसा जग गई और आप मन ही मन विचारने लगे कि—वह दिन कब आयेगा जब मैं श्रीवृन्दावनधामका दर्शन करूँगा। आप चल पड़े और चलते-चलते मार्गमें एक स्थानपर आपका मन रम गया। रमणीक सरोवर था, वहाँ आप विराजे। प्रेममें विभोर होनेके कारण दूसरेकी ओर देखते भी न थे। इनकी इस प्रेमावस्थाका हल्ला गाँव भरमें मच गया। कुछ समय बाद सरोवर में स्नान करती हुई एक स्त्रीको देखकर दैववश इनकी आँखें रीझ गईं। जब वह स्नान करके घरको चली, तो आसक्तिवश आप भी उसके पीछे लग गए। उस समय आपको यह

भी ध्यान न रहा कि–मैंने संसारी सुखोंको त्यागकर विरक्त-भक्तवेष धारणकर रक्खा है, लोग मुझे देखकर क्या कहेंगे ? वह अपने घरके भीतर चली गई, आप द्वारपर खड़े रह गए। आसक्तिवश हृदय जल रहा था, शरीर क्षीण हो रहा था ॥१७०॥

आयो वाको पति द्वार देखै भागवत ठाढे बड़े भागवत पूछी वधू सों जनाइयें ।
कही जू पधारौ पाँव धारो गृह पावनकों पांवन पखारौं जल ढारौं सीस भाइयें ॥
चले भौन मांझ मन आरति मिटायबेकौं गायबेकौं जोई रीति सोई कें बताइयें ।
नारिसे कह्यौ है तू सिंगार करि सेवा कीजै लीजैयौं सुहाग जामें बेगि प्रभु पाइयें ॥१७१॥

भावार्थ—बाहरसे स्त्रीका पति आया तो उसने देखा कि द्वारपर वैष्णव सन्त खड़े हैं। वह स्वयं परम वैष्णव था। भीतर जाकर उसने अपनी स्त्रीसे पूछा कि–सन्त क्यों खड़े हैं, तूने भिक्षा देकर उनका स्वागत क्यों नहीं किया? तब उसने सब बात कह सुनाई। इसने बाहर जाकर सत्कार पूर्वक श्रीविल्वमङ्गलजीसे कहा कि आप भीतर पधारिये, मेरा घर पवित्र करनेके लिये अपने श्रीचरणोंको उसमें रखिये। मैं आपके श्रीचरणोंको प्रक्षालन करके चरणामृतको शिरपर चढ़ाऊँ, यही मुझे अभीष्ट है। श्रीविल्वमङ्गलजी अपने मनकी व्यथाको मिटानेके लिये उसके घरमें गए। अपने सर्वस्वद्वारा वैष्णवसेवाका कर्तव्य है, यह जो कहने सुननेकी प्रथा है उसे उस भक्तने चरितार्थ करके बता दिया। स्त्रीसे कहा कि–तुम सोलह शृङ्गारसे सुसज्जित होकर इनकी सेवा करो। इनको प्रसन्न करके ऐसा सुहाग-सौभाग्य प्राप्त करो जिससे शीघ्र ही प्रभुकी प्राप्ति हो जाय ॥१७१॥

भक्त तोषिणी टिप्पणी—सेवा कीजिये–सन्तोंमें दोष दृष्टि नहीं रखना चाहिये। यथा–"सन्त हैं अनन्त गुन अन्त कौन पावै जाको जानै रतिवन्त कोऊ रीझै पहिचानि कै । औगुन न दीठि परै देखत ही नैन-भरैं ढरैं पग और उर प्रेमभर आनिकै ॥ जोपै घट क्रिया कछु देखियत इन माँझ करिले विचारि-हरि ही की इच्छा मानि कै । बालक सिंगार कै निहारि नेहवती माता देत जो डिठौना कारौ दीठि डर जानि कै ॥ अतः "कामी साधुहिं कृष्ण कहि, लोभिहिं वामन जानि । क्रोधी कौ नरसिंह कहि, नहीं भक्ति की हानि ॥"

चलीये सिंगार करि थार मैं प्रसाद लैके ऊँची चित्रसारी जहाँ बैठे अनुरागी हैं ।
झनक मनक जाइ जोरि कर ठाढ़ी रही गही मति देखि-देखि नून वृत्ति भागी हैं ॥
कही युगसूई ल्यावो,ल्याई,दई लई हाथ, फोरि डारी आँखें अहो बड़ी ये अभागी हैं ।
गई पति पास स्वास भरत न बोलि आवै बोली दुखपाय आय पांय परे रागी हैं ॥१७२॥

भावार्थ—पतिदेवकी आज्ञाके अनुसार वह अच्छी प्रकारसे शृङ्गार करके और थाल में भगवानका प्रसाद लेकर वहाँ पहुँची, जहाँ ऊपरके सुसज्जित कमरेमें परमप्रेमी श्रीविल्व-

मंगलजी बैठे थे। नूपुर एवं गहनोंकी मधुर ध्वनि करती हुई उनके आगे हाथ जोड़कर खड़ी हो गई। पतिव्रताको देखकर (उसे परमभक्ता जानकर) तथा स्वयं अपने विरक्त वेषको देखकर उन्होंने अपनी बुद्धिको स्थिर किया। तब तुच्छ विषय वासना मनसे सर्वथा दूर हो गई। फिर मनमें पश्चात्ताप करते हुए आँखोंका अपराध मानकर उस भक्तासे बोले—देवि! दो सुइयां ले आओ। वह ले आई। विल्वमंगलजीने सुइयोंसे अपनी दोनों आँखें फोड़ लीं और कहा—अहो! यह बड़ी अभागिनी हैं। वह बेचारी व्याकुल हो गई, लम्बी-लम्बी श्वासें लेने लगी, उससे बोला नहीं जाता था। अत्यन्त दुःख पाकर उसने पतिसे आंख फोड़नेकी बात कही। वह भक्त आया और अति व्यथित होकर उनके पैरोंमें गिर गया ॥१७२॥

कियो अपराध हम साधु कौं दुखायौं अहो बड़े तुम साधु हम नाम साधु धर्‌यो है।
रहौ अजू सेवा करौं करी तुम सेवा ऐसी जैसी नहीं काहू मांझ मेरौ मन भर्‌यो है॥
चले सुख पाय दृगभूतसे छुटाइ दिये हिये ही की आंखिन सों अबै काम पर्‌यो है।
बैठे बन मध्य जाइ भूखे जानि आप आइ भोजन कराइ चलौ छाया दिन ढर्‌यो है॥१७३॥

भावार्थ—उस भक्तने व्याकुल होकर कहा—भगवन्! हमने बड़ा भारी अपराध किया जो एक सन्त को दुःख पहुँचाया। श्रीविल्वमंगलजीने कहा—ओह! सच्चे साधु तो आप ही हैं हम तो केवल नामधारी साधु हैं वास्तवमें साधु नहीं हैं। उस भक्तने कहा—आप यहीं मेरे घरपर रहिये, हम आपकी सेवा करेंगे। श्रीविल्वमंगलजीने कहा—आपने जैसी सेवाकी है वैसी आज तक किसीने भी नहीं की है। सेवाका ऐसा भाव किसी दूसरेमें नहीं दिखाई पड़ता है। मेरा हृदय आपकी सेवासे अति सन्तुष्ट हो गया है। यह कहकर सुखपूर्वक वे वृन्दावनकी ओर चल पड़े। भूतके समान दुखदायी आँखोंको आपने फोड़कर छुड़ा दिया। अब हृदयकी (ज्ञान-वैराग्यकी) आँखोंसे काम पड़ा। चलते-चलते मार्गमें जंगल आया, वहीं आप बैठ गए। इन्हें भूखा जानकर भगवान स्वयं इनके पास आए और भोजन कराकर बोले—अब दिन बीत गया है, कहीं छायामें चलकर आराम कीजिए॥१७३॥

चले लै गहाइ कर छाया घन तरुतर चाहत छुड़ायो हाथ छोड़ै कैसे? नीको है।
ज्यों ज्यों बल करैं त्यों त्यों तजत न एऊ अरे लियोई छुटाइ गह्यो गाढ़ो रूपहीको है॥
ऐसे ही करत वृन्दावन घन आइ लियो पियो चाहैं रस सब जग लाग्यो फीको है।
भई उतकण्ठा भारी आए श्रीबिहारीलाल मुरली बजाइकै सुकियो भायो जीको है॥१७४॥

भावार्थ—भगवान अपना हाथ पकड़ाकर श्रीविल्वमंगलजीको सघन वृक्षकी छाया में ले गए। इन्हें बैठाकर भगवान अपना हाथ छुड़ाना चाहते थे पर श्रीविल्वमंगलजी हाथ क्यो छोड़ दें। उन्हें तो उसका स्पर्श अत्यन्त सुखप्रद लग रहा था। अब वे ज्यों-ज्यों हाथ

छुड़ानेके लिए जोरसे खींचते थे, त्यों-त्यों ये भी पकड़को कड़ी करके नहीं छोड़ते थे। अन्तमें अपना हाथ छुड़ा ही लिया। तब श्रीविल्वमंगलजीने कहा—

हस्तमुत्क्षिप्य यातोऽसि बलात्कृष्ण किमद्भुतम् ।
हृदयाद्यदि निर्यासि पौरुषं गणयामि ते ॥

दो०— बाँह छुड़ाये जात हौं निबल जानिकै मोहिं ।
हिरदय ते जब जाउगे सबल बदौंगो तोहिं ॥

हाथ छुड़ा लेनेके बाद हृदयस्थ श्रीकृष्णके स्वरूपको उन्होंने अति दृढ़तासे हृदयमें पकड़ रक्खा। इस प्रकार अनेक भगवल्लीलाओंका अनुभव करते हुए श्रीवृन्दावनमें आ गए। वे केवल वृन्दावन-रसका पान करना चाहते थे। उन्हें संसारके सभी रस नीरस लगने लगे। श्रीविल्वमंगलजीके हृदयमें प्रभुसे मिलनेकी लालसा अति तीव्र हो गई। तब इनकी अनन्य भक्तिपर रीझकर श्रीवृन्दावनविहारीलाल आये और मधुर मुरली बजाकर सुनाई। अपने भक्तके सभी मनोरथोंको पूर्ण किया ॥१७४॥

खुलि गये नैंन ज्यौं कमल रवि उदै भये देखि रूपराशि बाढ़ी कोटि गुनी प्यास है ।
मुरली मधुरसुर राख्यो मदभरि मनो ढरि आयो कानन मैं आनन मैं भास है ॥
मानिकै प्रताप चिन्तामनि मन मांझ भई 'चिन्तामनि जैति' आदि बोले रसरास है ।
'करनामृत' ग्रन्थ हृदय ग्रन्थिको विदारि डारै बांधै रस ग्रन्थ पन्थ युगल प्रकास है ॥१७५॥

भावार्थ—जैसे सूर्यके उदय होनेपर कमल खिल जाते हैं उसी प्रकार श्रीकृष्णकी मुरलीका मधुर स्वर सुनकर श्रीविल्वमंगलजीके नेत्र खुल गए। (भगवानका दर्शन करके) उनकी अनन्त रूपमाधुरीके दर्शन करनेकी अभिलाषा करोड़ों गुनी बढ़ गई। मुरलीके मधुर-स्वरने इन्हें प्रेमोन्मत्ततासे परिपूर्णकर दिया। ऐसा लगा कि स्वरकी रसधारा कानों में प्रवेश कर रही है और उसके दिव्य प्रकाशसे मुखमण्डल चमक रहा है। श्रीविल्वमङ्गल जीने अपने मनमें माना कि हमें जो यह दुर्लभ लाभ हुआ है वह सब चिन्तामणिके प्रतापसे ही हुआ है। अतः उन्होंने कृष्णकर्णामृतके मंगलाचरणमें 'चिन्तामणिर्जयति' यह महाभाव-रस पूर्ण श्लोक लिखा। [चिन्तामणिको गुरुतुल्य माना]। आपने 'कृष्णकर्णामृत' नामक ग्रन्थ रचा जो प्रेमरसकी राशि है। इसके पठन-पाठन एवं मननसे हृदयकी सन्देह (अविद्या) ग्रन्थियाँ खुल जाती है। और (प्रेमकी) रसग्रन्थि बँध जाती है अर्थात् श्रीकृष्णसे मधुररस-मय सम्बन्ध स्थापित हो जाता है और प्रिया-प्रियतमकी प्राप्तिका मार्ग प्रकाशित हो जाता है ॥१७५॥

भक्त तोषिणी टिप्पणी— चिन्तामनि जैति— श्रीकृष्णकर्णामृतके ग्रन्थके

मङ्गलाचरणका श्लोक–"चिन्तामणिर्जयति सोमगिरिर्गुरुर्मे, शिक्षागुरुश्च भगवान्शिखि-पिच्छमौलिः। यत्पारकल्पतरुपल्लवशेखरेषु, लीलास्वयंवर रसं लभते जयश्रीः॥" अर्थ–चिन्तामणिकी जय हो, मेरे दीक्षागुरु श्रीसोमगिरिजीकी जय हो एवं शिक्षागुरु मोरमुकुट-धारी भगवान श्रीकृष्णकी जय हो, जिन श्रीकृष्णके चरण कल्पतरु-नखर शिखरपर जयश्री (राधा) लीला स्वयंवर रसका आस्वादन करती हैं। करनामृत.....रस ग्रन्थ– "(दर्शनोत्कण्ठा) "हे देव हे दयित हे भुवनैकबन्धो, हे कृष्ण हे चपल हे करुणैकसिन्धो। हे नाथ हे रमण हे नयनाभिराम, हा हा कदा नु भवितास्मि पदं दृशोर्मे॥" (हे कृष्ण पता नहीं आप कब मेरे दृष्टिपथमें आओगे।)

चिन्तामनि सुनी वनमांझ रूप देख्यौ लाल ह्वै गई निहाल आई नेह नातो जानिकै।
उठि बहु मान कियौ दियौ दूध भात दोना दै पठावैं नित हरि हितू जन मानिकै॥
लियौ कैसे जाय तुम्हें भायसों दियो जो प्रभु लैहौं नाथ हाथसौं जो देहैं सनमानिकै।
बैठे दोऊ जन कोऊ पावै नहीं एक कन रीझे श्याम घन दीनो दूसरो हू आनिकै॥१७६॥

भावार्थ—जब चिन्तामणिने (संतोके द्वारा) यह सुना कि विल्वमंगलजीको वृन्दावन में श्रीकृष्णके दर्शन प्राप्त हो गये हैं तब तो वे निहाल हो गईं और उनसे अपना प्रेम सम्बन्ध जानकर वृन्दावनको आईं। श्रीविल्वमंगलजी उन्हें देखकर खड़े हो गये और उनका (गुरुवत्) स्वागत सत्कार किया और उन्हें दूध भात खीरका दोना दिया। चिन्तामणिने पूछा–यह तुम्हें कहाँसे मिला? तब उन्होंने बताया कि–भगवान अपना प्रेमी सेवक मानकर नित्य इसी प्रकारका प्रसाद मेरे लिए भेजते हैं। चिन्तामणिने कहा–प्रभुने प्रेम-पूर्वक जो तुम्हें दिया है, उसे मैं कैसे ले लूँ। मैं तो श्यामसुन्दरके हाथोंसे ही प्रसाद लूँगी, यदि वे कृपा करके आदर पूर्वक मुझे देंगे। ऐसा निश्चय करके दोनों प्रेमी बैठे ही रहे। किसीने भी कणमात्र भी प्रसाद नहीं पाया। दोनोंकी प्रेमनिष्ठा देखकर घनश्याम प्रभु रीझ गये और दूसरा दूध भातका दोना लाकर अपने हाथसे चिन्तामणिको भी दिया। दोनोंने एक साथ श्रीराधाकृष्णका दर्शन करके तब प्रसाद पाया॥१७६॥

विशेष चरित्र—एकबार श्रीविल्वमंगलजीके प्रार्थना करनेपर भगवान श्रीरामने धनुषबाणकी जगह मुरली एवं क्रीट मुकुटके स्थानपर मोरमुकुट धारण किया। यथा–विहाय कोदण्ड शरौ मुहूर्तं गृहाण पाणौ मणिचारु वेणुम्। मयूरबर्हञ्च निजोत्तमाङ्गे सीता-पते राघव रामचन्द्र॥" (श्रीकृष्णकर्णामृत)

एकबार एक संन्यासीको सन्त सेवाके लिए धनकी जरूरत थी। आभूषणोंसे युक्त मृतक राजकुमारीके गड़े हुये शवको उखाड़ना चाहा। इतनेमें आवाज सुनाई पड़ी कि तुम्हें

धन चाहिये तो मेरे पंलगके नीचे दो सोनेकी ईंटें गड़ी हैं, घर जाकर पितासे मांग लो। दोनों ईंटें मिलनेपर भी सन्त सेवाके लिए पर्याप्त धन न होनेके कारण पुनः आकर मृतक राजकुमारीके आभूषणोंको उतार लिया। पुनः आवाज आई कि संन्यासीको कंचन-कामिनी का स्पर्श निषेध है इसलिए धर्म भ्रष्ट होनेके कारण अगले जन्ममें तुम वेश्यागामी बनोगे लेकिन सन्त सेवाके प्रतापसे तुम्हें भगवानका दर्शन भी प्राप्त होगा। धर्मभ्रष्ट संन्यासीके स्पर्शसे अगले जन्म मैं वैश्या बनूँगी और तुम मेरे प्रेमी बनोगे। कालान्तरमें मेरी प्रेरणासे तुम्हारा उद्धार होगा।

श्रीविष्णुपुरीजी

कलि जीव जंजाली कारने विष्णुपुरी बड़िनिधि सँची॥
भगवत धर्म उतंग आन धर्म आन न देखा।
पीतर पटतर विगत निकष ज्यौं कुन्दन रेखा॥
कृष्ण कृपा कहि बेलि फलित सतसंग दिखायो।
कोटि ग्रन्थ को अर्थ तेरह विरचन में गायो॥
महासमुद्र भागौत ते भक्ति रतन राजी रची।
कलिजीव जंजाली कारने विष्णुपुरी बड़ि निधि सँची॥४७॥

भावार्थ—श्रीविष्णुपुरीजीने कलियुगके प्रपंची जीवोंके कल्याणके लिए बड़े भारी खजानेको (भक्तिको) इकट्ठा किया। उन्होंने वैष्णवधर्मको ही सर्वश्रेष्ठ माना। (पर दूसरे धर्मोंको दूसरा नहीं माना अर्थात् वैष्णव धर्मके अन्तर्गत ही माना) अन्य अवैदिक धर्मोंकी ओर देखा भी नहीं अर्थात् उन्हें धर्म ही नहीं माना। जिस प्रकार कसौटीपर सोनेकी रेखा के सामने पीतलकी रेखा चमकती ही नहीं है, उसी प्रकार उन्होंने अपनी बुद्धीकी कसौटी पर वैष्णवधर्मको कसकर सच्चा-खरा पाया और अन्य धर्मोंको तुच्छ देखा। आपने संत-सङ्गको श्रीकृष्णकी कृपारूपी लताका फल बताया। करोड़ों ग्रन्थोंका तात्पर्य (भक्ति)केवल तेरह विरचनों (अध्यायों)में गाया। श्रीमद्भागवतरूपी महासमुद्रसे रत्नरूपी श्लोकोंको निकालकर 'भक्तिरत्नावली' की रचना की॥४७॥

जगन्नाथ क्षेत्र मांझ बैठे महा प्रभूजू वै चहूँ ओर भक्त भूप भीर अति छाई है।
बोले विष्णुपुरी पुरीकाशी मध्य रहैं जाते जानियत मोक्ष चाह नीकी मन आई है॥
लिखी प्रभु चीठी 'आपु मणिगण माला' एक दीजिये पठाइ मोहि लागती सुहाई है।
जानि लई बात निधि भागवत रत्नदाम दई पठै आदि मुक्ति खोदिकै बहाई है॥१७७॥